कबीर के साहित्य में दलित चेतना

अनुज सेंगर

''मूल निवासी देश के द्रविड़ रहे सरताज।
उनकी ही संतान जो, दलित कहाये आज।।
देखो मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा पास।
दलित सभ्यता का जहाँ, गौरवमय इतिहास॥
आये आर्य विदेश से, यही करे इतिहास।
उत्तर ध्रुव, मध्येशिया, इनका मूल निवास॥''

दलित चेतना का जन्म भारतीय जाति व्यवस्था की कोख से या कह सकते है कि छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच और अस्पृश्यता की दारूण वेदना से हुआ है। यह सदियों से अछूत की जिंदगी जी रहे वंचितों जिन्हे हिन्दू धर्म वर्ण व्यवस्था ने वह स्थान दिया जो गाँवों नगरों के अहातों से दूर था और जहाँ केवल अंधकार ही अंधकार था के पीड़ा की सजीव अभिव्यक्ति है। इस चेतनाहीन समाज की सोयी हुई आत्मा को डाँ अंबडेकर ने जगाया। उन्होने अपना प्रेरणा स्त्रोत गौत्तमबुद्ध, कबीर, ज्योतिबाफुले को माना। इन सभी ने विषम समाज व्यवस्था का विरोध किया और दलितों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार को अपनी लेखनी से वीणा दी। बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय का संदेश महात्मा बुद्ध और महात्मा फुले के विचारों में हम पाते हैं। प्रश्न उठता है कि दलित किसे कहें? आदि मनुष्य प्रकृति से जुझतारहा होगा दूसरी तरपु वह प्रकृति पर निर्भर या उसी के सहारे जीवित था। ''कालान्तर में सभ्यता की यात्रा में मनुष्य खेमों में बँटने लगा। फिर खेमों में होड़ें लगी युद्ध हुए, जय-पराजय हुई और विजेता खेमो खुद को दूसरे से श्रेष्ठ समझने लगा और वह श्रेणियों में बँट गया। समानता एंव सामूहिकता खत्म होने जगी। जिस युग में सामूहिकता खत्म होने पर वह किसी व्यक्ति का गुलाम और दास बना होगा- उसी दिन स्वामी का जन्म हुआ, शायद पहली दलित कहानी भी उसी दिन घटी होगी। चूँकि दासता ही दलित अवधारणा की जननी है। यह दासता उसकी पराजय के कारण हो या उसके रग के कारण अथवा जन्म जाति या कबिलों के स्तर की भिन्नता के कारण, इसका सत्त विकास होता चला गया। दासता की मानसिकता के साथ-साथ समानता और सामूहिकता समाप्त हो गई।..

श्रेष्ठ लोगों की जमातें बनने की प्रक्रिया में ही हीन-भावना का जन्म हुआ होगा, चूँकि श्रेष्ठता की यह प्रक्रिया सह अस्तित्व से नहीं कमतर और कमजोर को नष्ट करके, निम्न वर्गो की कीमत पर उच्च वर्गो के निर्माण से सम्पन्न होती है। यदि, दलित शब्द विचार किया जाये तो विभिन्न विचारकों ने दलित शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ की है। डाँ अम्बेडकर ने दलित शब्द को अस्पृश्य के स्थान पर अपनाया। अस्पृश्य शब्द की जो व्याख्या उन्होंने 'The untouchable' नामक अपने अंग्रेजी ग्रन्थ में दी उससे यही पता चलता है। डॉ अंबेडकर ने गिरिजन खानाबदोश जातियों अपराधी की हुई जातियाँ ex-criminel tribes (denotifide) और अधूत इन तीनों समुदायों को अस्पृश्य (दलित) कहा है। उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार दलित शब्द में शोषित, पीड़ित और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल सभी वर्गो का समावेश हो जाता है। इन सभी जातियों की गुलामी और दासता का स्वरूप सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक ही है, इसलिए दलित शब्द का प्रयोग उन सभी अपेक्षित जातियों, जन जातियों के लिए किया जाता है। डॉ. अम्बेडकर ने "What Congress and Gandhi ji have done to the untouchables' नामक ग्रन्थ में अस्पृश्य के लिए "Depressed Classes', Scheduled caste/ और Servide caste इन शब्दों का प्रयोग किया है। बाबूराव बागुल के अनुसार, 'दलित' वह है जो वर्णव्यवस्था और उसकी मानसिकता को ध्वस्त कर देना चाहता है। दलित इस विश्व और जीवन को नये रूप में ढालना चाहता है जिसके हाथों को इस युग ने प्रज्ञावत प्रलयकारी बनाने के लिए, शास्त्रों को उपलब्ध कर दिया है। अन्य विद्वानों का मत इस प्रकार है-

1. ''दलित'' का अर्थ है जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया है।[2] 2. 'दलित' शब्द की कई मिली-जुली परिभाषाएँ हैं। इनका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं है। समाज में जो भी पीड़ित है, वे दलित हैं।' 3. ''दलित' मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो।''[2] 4. ''दलित' वह है जिसका दलन किया गया हो, उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं।''[3] प्राचीनकाल से ही दलित उद्धार के प्रयास होते आये हैं। दलित साहित्य का उद्भव कुछ लोग बौद्ध लोग बौद्ध काल में खोजते हैं, कुछ सतंवाङमय में (मध्यकालीन भक्ति साहितय में) तो कुछ क्रांतिवीर महात्मा फुले के विचार और साहित्य में। बुद्ध ने बौद्ध धर्म में तीन मूल तत्त्वों स्वतंत्रता, समता और न्याय प्राप्ति का समावेश कर अछूतो द्वार का प्रयास किया। इसके पश्चात् तेरहवीं सदी के सतं वाङमय ने वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत के प्रति वेदना और आक्रोश का स्वर उभरा। ''भारत के सांस्कृतिक इतिहास में पहली बार शूद्रों, अंत्यजों और सताये हुए वर्गो पे अपने संत दिये और इन संतो ने पहली बार जाति धर्म, वर्ण तथा सम्प्रदाय की चार-दीवारियों को तोड़ते हुए एक मानव धर्म तथा एक मानव संस्कृति का नारा बुलदं किया, इन संतों का उपय रुढ़िवादी, अंधविश्वास प्रधान सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था।'''' जिस समय मुसलमान भारत में आये उस समय सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। परिवर्तन के लिए बहुत कड़े धक्कों की आवश्यकता थी।'' बज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी जोगियों ने चारो ओर पाखंड और कर्मकांड फैला रखे थे। जनता की दृष्टि को आत्मकल्याण और लोककल्याण विधायक सच्चे कर्मों की ओर ले जाने के बदले उसे वे कर्मक्षेत्र से ही हटाने में लग गये थे। तभी साधारण जनता का सादगी में जीवन व्यतीत करने वाले संतों का एक ऐसा क्रांतिकारी वर्ग सामने आया जिसने सभी अतयाचारों, पाखण्डों, दुव्यवस्थाओं के विरोध में अपना झण्डा ऊँचा किया और प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने त्वाकर हिन्दुओं और ऊँचा

* शोध छात्रा क. मुं. हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा

किया और प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने जाकर हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्यरूप से दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।''इन संतों में अधिकतर निम्न जाति के लोग थे जो समाज और राज्य की तरफ से तिरस्कृत थे।''''इस आंदोलन का नेतृत्व दलितों ने ही किया, संतों का सरल मंत्र था।'जात पात पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई, कबीर ऊँच-नीच की भावना पर प्रहार करते हुए कहते हैं-''

''ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय,
सुबरन कलस सुरा मरा साधु निन्दत सोय।2

इसके साथ ही उन्होंने उच्च वर्ग के लोगों को अर्थात् ब्राह्मणों को चुनौती देते हुए कहा है-''तू बाह्मन मैं कासी का जुलाहा, चीन्ह न मोर गियाना।'' जिसे हमेशा दुत्कारकर अपमानित किया गया और मनुष्य होकर भी जिसके साथ पशु से बद्तर व्यवहार किया गया ऐसे शोषित, पीड़ित दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व कबीर ने किया और ईश्वर का वास किसी मन्दिर या मस्जिद में न माकर घट-घट में माना-

''जोगी गोरख-गोरख करै। हिन्दू राम-नाम उच्चरै।''
मुसलमान कहैं एक खुदाई। कबीर को स्वामी घटि-घटि रहयो समाइ॥

कबीर जुलाहे थे और उस समय समाज में भेदभाव, छुआछूत तथा जाति-पाति जैसी कुरीतियाँ फैली थीं। कबीर ने अपने और अपनी जाति के साथ हुए दुर्व्यवहार और भेदभाव को खुलकर सबके सामने रखा है। उन्होंने बेझिझक अपनी जाति को कमीनी जाति कहा है और यह भी बताया है कि उन दिनों भी यह जाति जन-साधारण में उपहास और मजाक का पात्र थी-

''सरग्गलोक में क्या दुख पड़िया तुम आई कलिमाहीं।
जाति जुलाहा नाम कबीरा अजहु पतीजौ नाहीं।।
तहाँ जाहु जहाँ पाट-पटंबर अगर चँदन घसि लीना।
आइ हमारै कहा करौजी हम तौ जाति कमीना।''

कबीरदास ने आजीवन सम्प्रदायवाद, ब्राह्मचार और बाहरी भेदभाव पर कणेरतम आघात किया।

वेदपाठ, तीर्थस्थान, व्रतोघापन, छूआछूत, अवतारोपासना, कर्मकांड इत्यादि सबका विरोध कबीरदास ने किया क्योंकि यही वे सारे हथियार थे जिससे अपने को उच्च जाति का मानने वाले लोगों ने समाज को वर्गो में विभाजित किया था तथा एक वर्ग को निम्न मानकर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया था।''वस्तुत: सारा हिन्दूधर्म उनकी दृष्टि में एक बाह्याचार बहुल ढकोसला- मात्रा था। बीजक में करीब एक दर्जन पद सीधे पंडित था पांडे को सम्बोधन करके कहे गए हैं। इन पदों में वे पंडित से तरह-तरह के प्रश्न पूछते हैं। कहते हैं धूत कहाँ से आ गई? पवन, वीर्य और रज के सम्बन्ध में गर्भास्थ में गर्म रहता है, फिर वह अष्टकमलदल के नीचे से उतरकर पृथ्वी पर आता है, ऐसी हालत में यह छूत कैसे आ गई? यही वह धरती है जिसमें चौरासी लाख योनि के प्राणियों का शरीर सड़कर मिट्टी हो गया। इस एक ही पाठ पर परमपिता ने सबको बिठाया है तो फिर छूत कैसे रही-

''पंडित, देखहूँ मन महँ जानी।
कहु धौ छूति कहाँ ते उपजी तबहि धूति तुम मानी।
बादि बंदे रुधिर के संगे घट ही महँ घट सपचै।
अष्ट कँवल होय पुहुँयी आया छूति कहाँ ते उपजै।
लख चौरासी नाना वासन सो सभ सरि भौ माटी।
एकै पाट सकल बैठाए छूति लेत धौं काकी।
धूतिहि जेवन धूतिहि अंचवन धूतिहि जगत उपाया।
कहहि कबीर ते छूति बिबरजित जाके संग न माया।''

(बीजक शब्द 41)

कबीर आडम्बरशून्य तथा सत्य एवं वास्तविकता से पूर्ण थे। चाहे जाति-प्रथा हो या ऊँच-नीच की भावना, चाहे मूर्ति पूजा हो या बांग लगाना, चाहे शून्य साधना हो या हठयोग की क्रियाएँ सभी का उन्होंने खंडन किया। उनका दृष्टिकोण है कि-

''सो ज्ञानी जो आप विचारै।''

कबीर को विश्वास था कि उन्होंने वास्तविक सत्य को जान लिया है इसलिए वे उस सच के विपरीत आचरण करने वालों को फटकार कर सीधे रास्ते पर लाना चाहते थे। ''हिंसा के लिए वे मुसलमानों को बराबर फटकारते रहे।'' उन्होंने वैष्णवों को मूर्ति पूजा, तीर्थ-यात्रा, तिलक, माला तथा ऊँच-नीच की भावनाओं का खण्डन यह कह कर किया

''पाथर पूजै हरि मिलै तो मै पूजूं पहार।
घर की चकिया कोई न पूजै पीस खाय संसार॥''

इस प्रकार जाति-पाति का विरोध करते हुए उन्होंने यह कहा हैं कि-

''साई के सब जीव है कोरी कुंजर दोह।''

तथा

''एक जोति से सब उत्पना, का बामन का सूद्रा।''

उनके इस तर्क के समक्ष कोई क्या कह सकता था कि-

''जो तू ब्राह्मन ब्राह्मणी जाया, और राह है क्यों ना आया।''

उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को एक साथ फटकार लगाई और उनके पाखण्डों पर प्रहार किया। उन्होंने मुसलमानों से प्रश्न किया कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है कि तुम मस्जिद पर चढ़कर जोर-जोर से बांग लगाया करते हो। ''उनके भाव सीधे हृदय में निकलते हैं और श्रोता पर सीधे चोट करते हैं।'' उन्होंने मानव को मानव से प्रेम करने का पाठ पठाया-

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जुगा मुआ पंडित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का पढे सो पंडित होय। ''

समाज सुधार की भावना या हिन्दू मुलिम एकता कबीर के लिए एक प्रमुख वस्तु थी जिसे उन्होंने अपनी काव्य-संवेदना में ढाला। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, ''वे जन्म से समाज सुधारक, कारणों से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे।'' कबीर के लिये डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के निम्नांकित उद्गार उचित ही हैं कि- ''उन्होंने देश में धर्म में समाज में दर्शन में साधना में, सभी क्षेत्रों में क्रान्ति की जो धारा बहाई थी, उससे निश्चय ही उन क्षेत्रों के कालुष्य बह गए थे।'' वास्तव में कबीर का धर्म, मानव धर्म ही है जिसकी स्थिति हितवाद की भूमिका पर है।

अपने समय में प्रचलित विविध धर्म-साधनाओं, आडम्बरों, अन्ध-विश्वासों का विरोध करते हुए कबीर ने जिस मानवता-प्रधान

सहज धर्म की प्रतिष्ठापना की है, उसके संदर्भ में डॉ. पारसनाथ तिवारी का यह मत उचित ही है-''सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अन्धविश्वासों, रुढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोत्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन सामन्तों तथा शासकों को लक्ष्य कर ऐसी अनेक बातें कहीं हैं जिनसे भौतिक ऐश्वर्यों पर आधारित उनके झूठे अभिमान का मूलोच्छेद हो।'' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कबीर ने समाज ने समाज के दलित, शोषित, पीड़ित वर्ग के ह्रदय में व्रिदोह की भावना भरी और उनके अधिकारों के लिए समाज में विद्रोह छेड़ा। निश्चित् ही वह महान् समाज सुधारक थे। उनके द्वारा उभरा हुआ आक्रोश और वेदना का स्वर ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था के दबाव में दब गया था परन्तु उनकी प्रेरणा से उन्नीसवीं सदी में पुनः विद्रोह का स्वर उठा और स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व 24 दिसम्बर 1927 को डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने मनुस्मृति के दहन के साथ दलित मुक्ति आंदोलन छोडा। तब से लेकर अब तक यह संघर्ष निरन्तर चला आ रहा है और एक दिन दलित को समाज में उचित स्थान अवश्य प्राप्त होगा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. 'पलाश-वन'- सम्पादक डॉ. अजीत कुमार राय
2. 'दलित कहानी संचयन' - रमणिका गुप्ता
3. 'कशिश'
4. 'प्रजा साहित्य'- दलित चेतना विशेषाक-सपादक- नारायण सुर्वे
5. दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास- डॉ मुन्ना तिवारी।
6. दलित साहित्य और उसकी सीमाएँ- डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर
7. शोध-धारा दलित विशेषांक
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
9. मध्यकालीन धर्म साधना- डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी
10. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी के संकलित निबन्ध- सम्पादक डॉ नामवरसिंह
12. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेन्द्र